ISSN: 2584-0231(Online)
International Journal of Multidisciplinary Research in Arts, Science and Technology
Volume 4 | Issue 10 | October 2026
Available online at: https://ijmrast.com
DOI: https://doi.org/10.59828/ijmrast.v4i10.328

# उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में लोकधुनों का सांगीतिक स्वरूप एवं अभिव्यक्तिगत महत्त्व

**निष्ठा मिश्रा[1], प्रोफेसर संध्या रानी शाक्य[2]**

[1]शोधार्थी, वीरांगना रानी अवंतीबाई लोधी महिला महाविद्यालय बरेली

[1]**Email Id:** nishtha1234mishra@gmail.com

[2]शोध निर्देशिका, वीरांगना रानी अवंतीबाई लोधी महिला महाविद्यालय बरेली

[2]**Email Id:** sandhyajagdish5@gmail.com

## Abstract (सारांश)

*भारतीय संगीत परंपरा में भक्ति संगीत भावाभिव्यक्ति और सांगीतिक सृजन के ऐसे स्वरूप को प्रस्तुत करता है, जिसमें काव्य, स्वर, लय तथा लोकजीवन के सांस्कृतिक अनुभव परस्पर संबद्ध होते हैं। उत्तर भारत की विविध भक्ति गायन परंपराओं में प्रचलित लोकधुनें इस संबंध को समझने का महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं। इन धुनों का सांगीतिक स्वरूप केवल उनकी सरलता, लोकप्रियता अथवा धार्मिक विषयवस्तु तक सीमित नहीं है, बल्कि उनकी स्वरात्मक बनावट, रागात्मक विशेषताओं, लयात्मक प्रवाह, ताल–प्रयोग तथा गायन की प्रस्तुति–पद्धति में भी अभिव्यक्त होता है। इस दृष्टि से लोकधुनों का अध्ययन भक्ति संगीत की अंतर्निहित सांगीतिक संरचना और उसकी भावाभिव्यक्ति के संबंध को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध–पत्र का केंद्र उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में प्रचलित चयनित लोकधुनों का सांगीतिक स्वरूप एवं अभिव्यक्तिगत महत्त्व है। अध्ययन के अंतर्गत ब्रज, अवध तथा उत्तर भारत की अन्य प्रासंगिक क्षेत्रीय गायन परंपराओं के प्रमाणिक उदाहरणों के माध्यम से लोकधुनों की स्वर–संरचना, रागात्मक संकेतों, लय एवं ताल के प्रयोग तथा काव्य और संगीत के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण किया जाना है। इसके साथ ही, यह समझने का प्रयास किया गया है कि लोकधुनों की विशिष्ट सांगीतिक विशेषताएँ भक्ति के भाव को स्वर और लय के माध्यम से किस प्रकार अभिव्यक्त करती हैं तथा क्षेत्रीय गायन परंपराएँ इस अभिव्यक्ति को किस प्रकार विशिष्टता प्रदान करती हैं। अध्ययन में लोकधुनों और शास्त्रीय संगीत के संबंधों को भी ध्यान में रखा गया है, किंतु लोकधुनों की पहचान को केवल शास्त्रीय रागों के आधार पर निर्धारित करने के बजाय उनकी स्वतंत्र सांगीतिक विशेषताओं को महत्त्व दिया गया है। इस शोध का व्यापक उद्देश्य उत्तर भारतीय भक्ति संगीत की लोकधुनों को केवल धार्मिक गायन अथवा भावप्रधान प्रस्तुति के रूप में देखने के स्थान पर एक विशिष्ट सांगीतिक अभिव्यक्ति के रूप में समझना है। इसके माध्यम से लोकधुनों की संरचनात्मक विशेषताओं, भक्ति–भाव की संगीतात्मक अभिव्यक्ति तथा क्षेत्रीय संगीत परंपराओं के योगदान को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन उत्तर भारतीय भक्ति संगीत की सांगीतिक विविधता और उसके लोकपरक स्वरूप को समझने की दिशा में एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।*

***प्रमुख शब्द :*** *उत्तर भारतीय भक्ति संगीत, लोकधुन, सांगीतिक संरचना, रागात्मकता, ताल एवं लय, भावाभिव्यक्ति, क्षेत्रीय गायन परंपरा।*

## प्रस्तावना

भारतीय संगीत परंपरा का विकास विविध सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और कलात्मक प्रवृत्तियों के साथ हुआ है। इस परंपरा में भक्ति संगीत का विशेष स्थान है, क्योंकि इसके माध्यम से आध्यात्मिक अनुभूतियों और धार्मिक विचारों को संगीतात्मक अभिव्यक्ति मिली है। भक्ति साहित्य में निहित भावों को स्वर और लय के माध्यम से जनसामान्य तक पहुंचाने में गायन परंपराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भजन, कीर्तन तथा संत–काव्य पर आधारित गायन इसके प्रमुख रूपों में शामिल हैं। इन विधाओं की प्रस्तुति में साहित्यिक भाव, सांगीतिक संरचना और सामूहिक सांस्कृतिक अनुभव का समन्वय दिखाई देता है। उत्तर भारत की भक्ति संगीत परंपरा विशेष रूप से विविधतापूर्ण है। ब्रज की कृष्णभक्ति से संबंधित पद–गायन, अवध की रामभक्ति परंपरा तथा संत–काव्य पर आधारित विभिन्न क्षेत्रीय गायन रूपों में भक्ति की अभिव्यक्ति के अलग–अलग स्वरूप मिलते हैं। इन परंपराओं का सांगीतिक रूप केवल प्रयुक्त काव्य की विषयवस्तु से निर्धारित नहीं होता,

बल्कि उसमें प्रचलित धुनों, स्वर–विन्यास, लयात्मक प्रवाह, गायन की शैली और स्थानीय सांस्कृतिक परिवेश का भी योगदान रहता है। इस कारण उत्तर भारतीय भक्ति संगीत का अध्ययन साहित्यिक अथवा धार्मिक दृष्टिकोण तक सीमित न रहकर उसके सांगीतिक पक्षों को भी केंद्र में रखने की अपेक्षा करता है। भक्ति संगीत में प्रचलित लोकधुनें इस संदर्भ में विशेष महत्त्व रखती हैं। लोकधुनों का निर्माण और संप्रेषण प्रायः सामुदायिक गायन, मौखिक परंपरा तथा स्थानीय संगीत–संस्कारों के माध्यम से होता रहा है। इनके स्वरूप में सहज स्वर–प्रयोग, आवर्ती धुनें, विशिष्ट लयात्मक गतियां और काव्य की पंक्तियों के अनुरूप संगीतात्मक विन्यास देखने को मिल सकता है। हालांकि इन विशेषताओं का स्वरूप प्रत्येक परंपरा और प्रस्तुति में समान नहीं होता। किसी लोकधुन की सांगीतिक पहचान उसके वास्तविक स्वर–संचार, धुन की बनावट, लय–ताल तथा गायन में प्रयुक्त अभिव्यक्तिगत साधनों के अध्ययन से ही स्पष्ट की जा सकती है।

लोकधुनों के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष उनका रागात्मक स्वरूप है। कुछ लोकधुनों में शास्त्रीय रागों से संबंधित स्वर–प्रयोग अथवा रागात्मक संकेत दिखाई दे सकते हैं, जबकि अन्य धुनें स्थानीय संगीत परंपराओं और स्वतंत्र स्वर–विन्यास के आधार पर अपनी पहचान निर्मित करती हैं। इसलिए लोकधुनों को केवल शास्त्रीय रागों की सीमाओं में रखकर समझना पर्याप्त नहीं है। इसी प्रकार ताल और लय का अध्ययन भी केवल ताल के नाम की पहचान तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसमें मात्राओं की गति, आवर्तन, लयात्मक पुनरावृत्ति और काव्य–पंक्तियों के साथ उनके संबंध पर ध्यान देना आवश्यक है। इन तत्त्वों का विश्लेषण भक्ति गायन की वास्तविक संगीतात्मक संरचना को समझने में सहायता करता है। लोकधुनों का अभिव्यक्तिगत महत्त्व भी उनके सांगीतिक स्वरूप से गहराई से जुड़ा है। भक्ति–काव्य के शब्दों, उनके भावार्थ और गायन में प्रयुक्त स्वर तथा लय के बीच स्थापित संबंध श्रोता के संगीतानुभव को प्रभावित कर सकता है। धुन की गति, स्वर–विस्तार, पंक्तियों की पुनरावृत्ति और सामूहिक गायन की प्रकृति किसी प्रस्तुति के भावात्मक प्रभाव में योगदान दे सकती है। इस दृष्टि से लोकधुनें केवल काव्य को गाने का माध्यम नहीं, बल्कि भक्ति की अनुभूति को संगीत के माध्यम से व्यक्त करने वाली सांगीतिक संरचनाएं भी हैं।

प्रस्तुत शोध–पत्र में उत्तर भारतीय भक्ति संगीत की चयनित लोकधुनों का अध्ययन इसी व्यापक संगीतशास्त्रीय दृष्टिकोण से किया जाना है। इसमें क्षेत्रीय भक्ति गायन परंपराओं के प्रमाणिक उदाहरणों के आधार पर स्वर–संरचना, रागात्मक संकेत, ताल एवं लय के प्रयोग तथा काव्य और संगीत के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण किया जाएगा। अध्ययन में उपलब्ध गायन–प्रस्तुतियों, विश्वसनीय संदर्भ–सामग्री और आवश्यकतानुसार स्वर–लिपि का सहारा लेते हुए लोकधुनों की विशेषताओं को समझने का प्रयास रहेगा। इसके माध्यम से उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में लोकधुनों की भूमिका, उनकी सांगीतिक विशिष्टता और भक्ति–भाव की अभिव्यक्ति में उनके योगदान को अधिक स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया जा सकेगा।

## अध्ययन के उद्देश्य एवं शोध–पद्धति

1. प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में प्रचलित चयनित लोकधुनों के सांगीतिक स्वरूप तथा भक्ति–भाव की अभिव्यक्ति में उनकी भूमिका को समझना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया हैरू
2. चयनित भक्ति गीतों की लोकधुनों में स्वर–संरचना, लय तथा ताल संबंधी विशेषताओं का विश्लेषण करना।
3. इन धुनों में विद्यमान रागात्मक तत्त्वों का अध्ययन करना, साथ ही लोकधुनों की विशिष्टता को शास्त्रीय रागों के निर्धारित स्वरूप तक सीमित न रखना।
4. गीत के काव्य, धुन और लय के पारस्परिक संबंधों के माध्यम से भक्ति–भाव की सांगीतिक अभिव्यक्ति को समझना।

प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए संबंधित विषय पर उपलब्ध प्रामाणिक पुस्तकों, शोध–पत्रों तथा अन्य विश्वसनीय स्रोतों का उपयोग किया जाएगा। इसके साथ ही चयनित भक्ति गीतों की उपलब्ध गायन–रिकॉर्डिंग का श्रवण एवं सांगीतिक विश्लेषण किया जाएगा। विश्लेषण के दौरान स्वर–गति, धुन की संरचना, लय–ताल तथा काव्य और संगीत के संबंध को प्रमुख आधार बनाया जाएगा। रागात्मकता का निर्धारण केवल समान स्वर–समूह के आधार पर न करके, उपलब्ध सांगीतिक साक्ष्यों के अनुसार किया जाएगा। इस प्रकार, अध्ययन का उद्देश्य लोकधुनों को किसी निश्चित शास्त्रीय साँचे में बाँधना नहीं, बल्कि उनकी सांगीतिक विशेषताओं और भावाभिव्यक्ति को उनके संदर्भ में समझना है।

## उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में लोकधुनों का सांगीतिक स्वरूप एवं भावाभिव्यक्ति

उत्तर भारतीय भक्ति संगीत की परंपरा में लोकधुनों का महत्त्व केवल उनकी सहजता और लोकप्रियता तक सीमित नहीं है, बल्कि वे काव्य, संगीत और धार्मिक–सांस्कृतिक अनुभूति के बीच एक महत्त्वपूर्ण सेतु का कार्य करती हैं। भक्ति–पदों में संगीत की भूमिका शब्दों को स्वरबद्ध करने के साथ–साथ उनके भाव और अर्थ को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में भी दिखाई देती है। किसी पद की धुन,

स्वर–विन्यास, लयात्मक गति, शब्दों की पुनरावृत्ति तथा गायन की प्रस्तुति उसके भावात्मक स्वरूप को प्रभावित करते हैं। इस दृष्टि से भक्ति संगीत का अध्ययन केवल उसकी काव्यगत विषयवस्तु के आधार पर पूर्ण नहीं माना जा सकता, बल्कि उसके सांगीतिक पक्ष को भी समान महत्त्व देना आवश्यक है। उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में ब्रज की कृष्णभक्ति परंपरा, निर्गुण संत–काव्य और विभिन्न क्षेत्रीय लोकगायन परंपराएँ अपने अलग–अलग सांगीतिक स्वरूपों के साथ विकसित हुई हैं। इनमें लोकधुनों का प्रयोग, गायन की पद्धति और भावाभिव्यक्ति के तरीके भी एक–दूसरे से भिन्न दिखाई देते हैं। ब्रज क्षेत्र की समाज–गायन परंपरा भक्ति संगीत के सांगीतिक स्वरूप को समझने का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस परंपरा में भक्ति–पदों का गायन सामूहिक रूप से किया जाता है, जिसमें संगीत और धार्मिक उपासना का घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है। ताकाको तनाका ने अपने शोध–पत्र द समाज–गायन ट्रेडीशनरू ट्रांसमिटिंग ए म्यूजिकको–रिलिजियस सिस्टम इन नॉर्थ इंडिया में समाज–गायन की परंपरा का अध्ययन करते हुए उसकी सांगीतिक व्यवस्था, सामूहिक प्रस्तुति और धार्मिक विचारधारा के साथ उसके संबंधों पर प्रकाश डाला है। उनके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि समाज–गायन केवल भक्ति–पदों के सामूहिक गायन की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी विशिष्ट परंपरा है जिसके माध्यम से संगीत संबंधी ज्ञान, प्रस्तुति–पद्धति और धार्मिक मान्यताओं का संप्रेषण भी होता है।

समाज–गायन की प्रस्तुति में सामूहिक सहभागिता के साथ प्रश्नोत्तर अथवा प्रतिसादात्मक गायन–पद्धति का भी महत्त्व है। इसमें गायन करने वाले समूहों के बीच सांगीतिक संवाद स्थापित होता है और पदों की प्रस्तुति निर्धारित धुनों तथा लयात्मक अनुशासन के अनुरूप होती है। पदों की पुनरावृत्ति और सामूहिक स्वर–प्रस्तुति इस परंपरा को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है। इसके सांगीतिक पक्ष का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह भी है कि इसमें लोकाभिमुख गायन–तत्त्वों के साथ ध्रुपद–आधारित परंपरा और राग–ताल संबंधी संगीतात्मक अवधारणाओं का संबंध दिखाई देता है। इसलिए समाज–गायन को केवल सामान्य लोकगायन के रूप में देखना उचित नहीं होगा। यह उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में धार्मिक परंपरा और व्यवस्थित सांगीतिक अभिव्यक्ति के अंतर्संबंध को समझने का एक महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। ब्रजभाषा के भक्ति–पदों के सांगीतिक अध्ययन में लूसी एल. रोसेनस्टीन का शोध भी उल्लेखनीय है। उनकी पुस्तक द डिवोशनल पोएट्री ऑफ स्वामी हरिदासरू ए स्टडी ऑफ अर्ली ब्रज भाषा वर्स में स्वामी हरिदास से संबंधित पदों की साहित्यिक परंपरा के साथ उनके संगीतात्मक पक्ष का भी विवेचन किया गया है। इसमें पदों के राग–वितरण, छाप की संरचना तथा स्वामी हरिदास की परंपरा और ध्रुपद के संबंध पर विचार किया गया है। यह अध्ययन इस तथ्य को समझने में सहायक है कि ब्रजभाषा के भक्ति–पदों की संरचना में साहित्य और संगीत दोनों की समान रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इन पदों का सांगीतिक पक्ष उनकी भावाभिव्यक्ति, प्रस्तुति और परंपरागत स्वरूप को समझने के लिए विशेष महत्त्व रखता है।

ब्रज की समाज–गायन परंपरा और स्वामी हरिदास के पदों के संदर्भ में यह विचार करना भी आवश्यक है कि किसी भक्ति–पद की धुन उसके काव्यगत आशय को किस प्रकार प्रभावी बनाती है। पद के शब्दों का स्पष्ट उच्चारण, किसी पंक्ति या शब्द पर स्वर का ठहराव, स्वर–गति और लय का अनुशासन उसकी प्रस्तुति को विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं। यहाँ यह अंतर समझना आवश्यक है कि किसी पद के साथ राग का नाम उल्लिखित होना और उसकी वास्तविक गायन–प्रस्तुति का उस राग के स्वरूप के अनुरूप होना दो अलग–अलग बातें हैं। कई बार परंपरागत रूप से किसी राग के नाम से संबद्ध पदों की धुन में स्थानीय अथवा गायन–परंपरागत विशेषताएँ भी सम्मिलित हो सकती हैं। इसलिए किसी पद की रागात्मकता का अध्ययन केवल उसके नाम के आधार पर नहीं, बल्कि उपलब्ध गायन–रूप, स्वर–प्रयोग और सांगीतिक चलन के आधार पर किया जाना चाहिए। उत्तर भारतीय भक्ति संगीत की दूसरी महत्त्वपूर्ण धारा कबीर के निर्गुण भजनों की मौखिक गायन–परंपरा में दिखाई देती है। कबीर के पदों में ईश्वर की आंतरिक अनुभूति, आत्मज्ञान, सामाजिक रूढ़ियों की आलोचना और बाह्य आडंबरों के प्रति विरोध जैसे विषय प्रमुखता से अभिव्यक्त हुए हैं। इन पदों का सांगीतिक स्वरूप उनकी मौखिक परंपरा और विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेशों में होने वाली प्रस्तुतियों से भी जुड़ा है। लिंडा हेस ने अपनी पुस्तक बॉडीज ऑफ सॉन्गरू कबीर ओरल ट्रेडीशंस एंड परफॉरमेटिव वर्ल्ड्स इन नॉर्दर्न इंडिया में कबीर की मौखिक परंपराओं का अध्ययन करते हुए गायकों, श्रोताओं, प्रस्तुति–परिवेश और क्षेत्रीय संदर्भों की भूमिका को रेखांकित किया है। उनके अध्ययन से यह समझने में सहायता मिलती है कि मौखिक परंपरा में किसी रचना का पाठ और उसका गायन हमेशा एक स्थिर रूप में सुरक्षित नहीं रहता, बल्कि अलग–अलग प्रस्तुतियों में शब्दों, पंक्तियों, धुनों और उनकी व्याख्या में विविधता भी दिखाई दे सकती है। कबीर के भजनों के सांगीतिक अध्ययन में इस विविधता को विशेष रूप से ध्यान में रखना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, "मोको कहाँ ढूँढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में" से आरंभ होने वाला कबीर से संबद्ध लोकप्रिय पद ईश्वर की खोज को बाहरी आडंबरों के स्थान पर आंतरिक अनुभूति से जोड़ता है। इस पद की विभिन्न उपलब्ध प्रस्तुतियों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर धुन, लय, गायन की गति, शब्दों के उच्चारण और संगत के स्वरूप में अंतर का परीक्षण किया जा सकता है। मौखिक परंपरा की प्रकृति को देखते हुए किसी एक प्रचलित धुन को कबीर की मूल अथवा एकमात्र धुन मानना उचित नहीं होगा। इसके स्थान पर विभिन्न

गायन–रूपों को उनके गायक, प्रस्तुति और उपलब्ध रिकॉर्डिंग के आधार पर अलग–अलग समझना अधिक उपयुक्त है। इससे पद के काव्यगत आशय और उसके सांगीतिक स्वरूप के बीच संबंध का विश्लेषण अधिक विश्वसनीय ढंग से किया जा सकता है। कबीर के भजनों के सांगीतिक पक्ष से संबंधित जी. जी. जी. एल. अबेयसेकरा का शोध–पत्र द पोजीशन ऑफ कबीर भजनस इन नॉर्थ इंडियन म्यूजिक भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसमें कबीर के भजनों के संगीत और उनकी काव्यगत विषयवस्तु के पारस्परिक संबंध पर विचार किया गया है।

निर्गुण संत–काव्य की विषयवस्तु पारंपरिक स्तुति–प्रधान भजनों से कुछ अलग होते हुए भी भक्ति संगीत की व्यापक परंपरा से जुड़ी हुई है। इस दृष्टि से कबीर के पदों का अध्ययन केवल उनके दार्शनिक और सामाजिक विचारों के आधार पर करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनकी सांगीतिक प्रस्तुति और गायन–परंपरा को भी समझना आवश्यक है। इस प्रकार कबीर के भजन भक्ति संगीत के उस स्वरूप को सामने लाते हैं जिसमें काव्यगत विचार और सांगीतिक अभिव्यक्ति एक–दूसरे के पूरक बनते हैं। लोकधुनों की सांगीतिक संरचना का विश्लेषण करते समय स्वर–विन्यास, रागात्मकता और लय–ताल जैसे तत्त्वों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। स्वर–विन्यास के अंतर्गत किसी धुन में प्रयुक्त स्वरों, उनकी गति, ठहराव और पुनरावृत्ति का अध्ययन किया जा सकता है। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि धुन किस प्रकार आगे बढ़ती है और उसके विभिन्न अंश किस सांगीतिक संबंध के आधार पर एक–दूसरे से जुड़े होते हैं। इसी प्रकार लयात्मक संरचना के अध्ययन में गायन की गति, शब्दों के उच्चारण, पंक्तियों की पुनरावृत्ति और तालबद्ध संगत के संबंध को समझना आवश्यक है। यदि किसी प्रस्तुति में ताल की स्पष्ट पहचान संभव हो, तो उसे सांगीतिक प्रमाण के आधार पर ही निर्धारित किया जाना चाहिए। केवल सुनने में किसी प्रचलित ताल से समानता दिखाई देने पर किसी निश्चित ताल का नाम देना उचित नहीं होगा। लोकधुनों में रागात्मक तत्त्वों की पहचान भी एक सावधानीपूर्ण प्रक्रिया है। किसी धुन में शास्त्रीय राग के कुछ समान स्वर अथवा स्वर–समूह मिलने मात्र से उसे उस राग पर आधारित घोषित नहीं किया जा सकता। राग की पहचान के लिए स्वरों के प्रयोग, उनके पारस्परिक संबंध, विशिष्ट चलन और प्रस्तुति की सांगीतिक विशेषताओं का परीक्षण आवश्यक होता है। दूसरी ओर, लोकधुनों का अपना स्वतंत्र क्षेत्रीय और परंपरागत स्वरूप भी हो सकता है, जिसकी व्याख्या केवल शास्त्रीय रागों के आधार पर संभव नहीं है। इसलिए लोकधुनों का अध्ययन करते समय शास्त्रीय संगीत से उनकी समानताओं को पहचानने के साथ–साथ उनकी स्वतंत्र सांगीतिक विशेषताओं को भी महत्त्व देना चाहिए। यही दृष्टिकोण लोक और शास्त्रीय संगीत के पारस्परिक संबंध को अधिक संतुलित ढंग से समझने में सहायक है।

उपर्युक्त परंपराओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में लोकधुनों का सांगीतिक स्वरूप विविधतापूर्ण है। ब्रज की समाज–गायन परंपरा में सामूहिक प्रस्तुति, निर्धारित धुनों और विशिष्ट धार्मिक–सांगीतिक व्यवस्था का महत्त्व दिखाई देता है, जबकि कबीर के निर्गुण भजनों की मौखिक परंपरा में गायन–रूपों की विविधता, क्षेत्रीय प्रभाव और प्रस्तुति के संदर्भ प्रमुख हैं। दोनों परंपराएँ यह स्पष्ट करती हैं कि भक्ति संगीत में धुन केवल काव्य को स्वर देने का माध्यम नहीं है, बल्कि वह रचना के भावात्मक आशय, उसकी प्रस्तुति और सांस्कृतिक संप्रेषण से भी गहराई से जुड़ी होती है। फिर भी इन परंपराओं की अपनी विशिष्टताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। अतः उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में लोकधुनों का सांगीतिक अध्ययन तभी सार्थक और प्रामाणिक हो सकता है, जब काव्यगत अर्थ, स्वर–विन्यास, लयात्मक संरचना, गायन–पद्धति तथा उपलब्ध सांगीतिक उदाहरणों का समन्वित और तुलनात्मक विश्लेषण किया जाए।

## निष्कर्ष

उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में लोकधुनों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि संगीत भक्ति–काव्य की अभिव्यक्ति का केवल सहायक माध्यम नहीं है, बल्कि उसके भावात्मक और सांस्कृतिक स्वरूप का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। भक्ति–पदों में प्रयुक्त धुन, स्वर–विन्यास, लयात्मक गति, शब्दों की पुनरावृत्ति और गायन–पद्धति मिलकर रचना के भाव को प्रभावशाली रूप प्रदान करते हैं। इन सांगीतिक तत्त्वों के माध्यम से भक्ति–काव्य का भाव, विचार और आध्यात्मिक अनुभूति श्रोताओं तक पहुँचती है। ब्रज की समाज–गायन परंपरा और कबीर के निर्गुण भजनों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि उत्तर भारतीय भक्ति संगीत का स्वरूप एकरूप नहीं है। ब्रज की समाज–गायन परंपरा में सामूहिक प्रस्तुति, निर्धारित गायन–पद्धति और धार्मिक–सांगीतिक अनुशासन का विशेष महत्त्व दिखाई देता है। वहीं कबीर के निर्गुण पदों की मौखिक परंपरा में क्षेत्रीय प्रभाव, गायन की विविधता और प्रस्तुति के बदलते स्वरूप महत्त्वपूर्ण हैं। इन दोनों परंपराओं की तुलना से यह समझने में सहायता मिलती है कि भक्ति संगीत अलग–अलग सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेशों में अपनी विशिष्ट सांगीतिक पहचान विकसित करता है। अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि लोकधुनों और शास्त्रीय संगीत के बीच संबंध को किसी एक निश्चित रूप में नहीं समझा जा सकता। कुछ भक्ति–गायन परंपराओं में राग–ताल आधारित संगीत–तत्त्व दिखाई देते हैं, जबकि अनेक लोकधुनों में क्षेत्रीय और परंपरागत

स्वरूप अधिक प्रमुख होते हैं। इसलिए लोकधुनों का विश्लेषण करते समय केवल शास्त्रीय रागों और तालों के आधार पर उनका मूल्यांकन करना पर्याप्त नहीं है। उनके स्वतंत्र स्वरूप, गायन–परंपरा और सांस्कृतिक संदर्भ को भी समान महत्त्व देना आवश्यक है।

अंततः कहा जा सकता है कि उत्तर भारतीय भक्ति संगीत की लोकधुनें भारतीय संगीत की विविधतापूर्ण परंपरा को समझने का महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करती हैं। इनमें काव्य, संगीत और लोकजीवन के बीच स्थापित संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इनका अध्ययन न केवल भक्ति संगीत की सांगीतिक विशेषताओं को समझने में सहायक है, बल्कि उन मौखिक और क्षेत्रीय परंपराओं के महत्त्व को भी सामने लाता है, जिनके माध्यम से भक्ति–संगीत पीढ़ी–दर–पीढ़ी संप्रेषित होता रहा है। इस प्रकार लोकधुनें उत्तर भारतीय भक्ति संगीत की भावात्मक अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक निरंतरता दोनों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

## संदर्भ ग्रंथ


[1]. सोनी, गोपाल एवं सुनीति दत्ता (2025)। “ब्रजभूमि में समाज गायन की सांस्कृतिक परंपरा।” *स्वर सिंधु*, 13(2)।

[2]. राजभर, वी., संजय कुमार एवं अजीत के. मिश्रा (2025)। “फीमेल वॉयसेज़ इन कबीर ओरल एंड परफॉर्मेटिव ट्रेडिशन्स इन नॉर्थ इंडिया।” *द आई.यू.पी. जर्नल ऑफ इंग्लिश स्टडीज़*, 20(2), 96–113। https://doi.org/10.71329/IUPJES/2025.20.2-

[3]. तनाका, ताकाको (2008)। “द समाज-गायन ट्रेडिशन: ट्रांसमिटिंग अ म्यूज़िको-रिलिजियस सिस्टम इन नॉर्थ इंडिया।” *सेनरी एथनोलॉजिकल स्टडीज़*, 71, 87–101।

[4]. विलियम्स, रिचर्ड डेविड (2020)। “साउंडिंग आउट द डिवाइन: म्यूज़िकल प्रैक्टिस ऐज़ थियोलॉजी इन समाज गायन।” *द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ हिंदुइज़्म: हिंदू प्रैक्टिस*, गैविन फ्लड (संपादक), पृ. 342–361। ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। https://doi.org/10.1093/oso/9780198733508.003.0013A

[5]. अबेस्केरा, जी. जी. जी. एल. (अक्टूबर 2023)। “द पोज़िशन ऑफ कबीर भजन्स इन नॉर्थ इंडियन म्यूज़िक।” *जर्नल ऑफ रिसर्च इन म्यूज़िक*, 1(2), 35–44। https://doi.org/10.4038/jrm.v1i2.10A

[6]. गुप्ता, रेनू एवं रवजोत कौर (2026)। “कम्युनिटी सिंगिंग इन द ब्रज रीजन ऐज़ अ फोक-रिलिजियस ट्रेडिशन।” *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च – ग्रंथालय*, 14(2SCE), 330–334। https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v14.i2SCE.2026.6732A

[7]. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद (2021)। *कबीर*। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

[8]. हेस, लिंडा (2015)। *बॉडीज़ ऑफ सॉन्ग: कबीर ओरल ट्रेडिशन्स एंड परफॉर्मेटिव वर्ल्ड्स इन नॉर्थ इंडिया*। ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

[9]. रोथेंस्टीन, लुडमिला एल. (1997)। *द डिवोशनल पोएट्री ऑफ स्वामी हरिदास: अ स्टडी ऑफ अर्ली ब्रज भाषा वर्स*। ग्रोनिंगन: एगबर्ट फॉर्स्टन।



***Cite this Article:***

*मिश्रा, निष्ठा, एवं शाक्य, संध्या रानी (2026). उत्तर भारतीय भक्ति संगीत में लोकधुनों का सांगीतिक स्वरूप एवं अभिव्यक्तिगत महत्त्व. International Journal of Multidisciplinary Research in Arts, Science and Technology (IJMRAST), 4(10), 65–69.*

***Journal URL:*** https://ijmrast.com/ ***DOI:*** https://doi.org/10.59828/ijmrast.v4i10.328



This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Non-Commercial 4.0 International License.

© The Author(s) 2026. IJMRAST Published by Surya Multidisciplinary Publication.

***Disclaimer/Publisher's Note:*** *The author(s) are solely responsible for the content and claims of this article. The publisher and editors assume no legal liability for any errors, copyright violations, or damages arising from its use.*